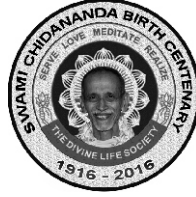


आपका सर्वोच्च भला

श्री स्वामी बिडानन्द



अनुवादिका

श्री स्वामी शिवाश्रितानन्द माता जी

प्रकाशक

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

पत्रालय : शिवानन्दनगरहृदय २४९१९२

जिला : तिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत

www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org

प्रथम संस्करण : २०१४
(२,००० प्रतियाँ)

द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी

Swami Chidananda Birth Centenary Series—23

निःशुल्क वितरणार्थ

‘द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर’ के लिए
स्वामी पद्मनाभानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा ‘योग-वेदान्त
फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगरद्वार २४९१९२,
जिला टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड’ में मुद्रित।

For online orders and Catalogue visit : dlsbooks.org



ब्रह्मलीन परम पावन
श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज द्वारा
प्रातः ब्राह्ममुहूर्त के ध्यान के उपरान्त दिये गये
प्रवचनों का सार-संग्रह



विषय-सूची

१. आपका सर्वोच्च भला	५
२. दृढ़ता और आकांक्षा से सफलता	९
३. ऐसे मन के लिए प्रार्थना करें	१२
४. स्वयं को निष्पक्षता से जाँचें	१६
५. ईश्वर-चिन्तन में निवास करें !	२२
६. आन्तरिक शान्ति का रहस्य	२६

आपका सर्वोच्च भला

प्रत्येक होने वाली घटना को मात्र हो कर, बिना आपके लिए कुछ महत्त्वपूर्ण छोड़े, यों ही नहीं चली जाने दें। प्रत्येक अनुभव व्यक्ति को कुछ-न-कुछ सिखा कर जाने के लिए होता है, वह उसको कुछ-न-कुछ याद दिलाने के लिए ही होता है।

होने वाली घटनाओं को मात्र गुजर जाने वाली होने के कारण से ही सम्भवतया उतना महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जाता, जितना अपने समय पर समझा जाता है। जैसे प्रत्येक वर्ष २ अक्तूबर को गान्धी जयन्ती का विशेष महत्त्व होता है। शेष वर्ष-भर उसके सम्बन्ध में कोई सोचता भी नहीं। प्रायः सभी अवसरों के साथ ऐसा ही है।

लोग जन्म लेते हैं और मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। जिनका जन्म हुआ है, उनका मरण निश्चित है। यह एक बड़ा सत्य है। किन्तु हमें पूछना चाहिए कि कबका जन्म होता है और कौन मृत्यु को प्राप्त होता है? और अजन्मा क्या है जो कभी मरता नहीं? हमारा चिन्तन दोनों के प्रति होना चाहिए।

जो जन्म लेता है, वह जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि का विषय होता है। मानव उत्पन्न होता है, बढ़ता है, उसमें परिवर्तन आते हैं, वह रोग-ग्रस्त भी होता है, धीरे-धीरे क्षीण हो जाता है और अन्ततः मृत्यु-ग्रस्त हो जाता है। यह सब परिवर्तन शरीर पर घटते हैं। किन्तु यह

तथ्य कि हम परिवर्तन की बात करते हैं, यह किसी ऐसे के सन्दर्भ से है जो परिवर्तनहीन है। अन्यथा हम कैसे जानते कि यह परिवर्तन हो रहा है।

यह किसी ऐसी अपरिवर्तनशील वस्तु के सन्दर्भ से ही है कि हम अन्य परिवर्तन होने वाली वस्तुओं की बात कहते हैं कि ये सब वैसी नहीं हैं। जैसेद्वहएक मोमबत्ती अँधेरे कक्ष में प्रकाश कर देती है। विद्युत् बल्ब उसे और अधिक प्रकाशित कर देता है। ट्यूबों का सामूहिक प्रकाश उसमें दिन जैसा प्रकाश कर सकता है। किन्तु यह सब अन्धकारपूर्ण वास्तविक अवस्था के सन्दर्भ में है। प्रकाश की परिवर्तनीय अधिक-से-अधिक प्रकाशपूर्ण स्थितियाँ उसकी उस प्रथम वास्तविक अन्धकारपूर्ण स्थिति के सन्दर्भ को ले कर है जो सदा से थी।

अतः समस्त वस्तुओं के परिवर्तनशील होने की बात उस सदा व्याप्त अपरिवर्तनीय मूल-सत्ता के सन्दर्भ पर ही आधारित है। वह अपरिवर्तनीय मूल-सत्ता क्या है? उसे जानना चाहिए। इन परिवर्तनशील वस्तु-पदार्थों का यही उपयोग है कि यह कम-से-कम हमारे ध्यान को उस मूल-आधार तक ले जाती हैं जिसके परिवेश में यह सब परिवर्तन घट रहा है। कोई भी कलाकार शून्य लकड़ी के चौखटे पर चित्रकारी नहीं कर सकता, भले ही वह कितना भी सुन्दर क्यों न हो। कोई भी कलाकार ऐसा नहीं कर सकता। उस चौखटे पर कैन्वस का लगा होना आवश्यक है। रंगों और आकृतियों के लिए कोई आधार चाहिए।

यह सब परिवर्तनशील वस्तु-पदार्थ, जो संसार में व्याप्त हैं, जिनसे मिल कर ही यह संसार बना हुआ है, इनका आधार क्या है? उपनिषदों की भाषा मेंद्वहवही जानने योग्य है, उसी का चिन्तन किया जाना चाहिए, उसी का ध्यान करना चाहिए, उसी का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। और वह सत्ता, वह अपरिवर्तनीय, शाश्वत सत्ता, वह क्या है? कौन है वह जो

 इस समस्त परिवर्तन को जानता है? कौन है वह जो बता सकता है कि परिवर्तन हो रहा है?

जब तक कोई साक्षी सत्ता न हो और जब तक वह साक्षी सत्ता चेतन साक्षी सत्ता न हो, तब तक वह इसकी पुष्टि नहीं कर सकती कि सभी वस्तुएँ अस्थायी हैं, क्षणिक, अनित्य और परिवर्तनशील हैं। निश्चित रूप से यह एक जागरूक, अभिज्ञ सत्ता है जो यह सब देखती है, इसमें परस्पर समता-विषमता देखती है और निर्णय देती है कि समय के अनुसार सब-कुछ समाप्त होता जाता है। कुछ भी स्थायी नहीं है, कुछ भी सदा रहने वाला नहीं है। अतः कोई ऐसी सत्ता है, जो इसकी पुष्टि करती है, जो यह समझती है कि सब-कुछ बदल रहा है, वह एक चेतन सत्ता है, एक ऐसी सत्ता है जो स्वयं को अभिव्यक्त कर सकती है। वह क्या है? वही आप हैं!

तब फिर आप यह 'मैं, मैं, मैं' क्या कहते हैं? आप जिसे 'मैं, मैं' कहते हैं, वह कुछ ऐसी वस्तु है, जो इस जगत् की परिवर्तनशील नाशवान् वस्तुओं से सम्बन्धित है। किन्तु वह निरन्तर अपरिवर्ती सत्ता जिसने दस वर्ष पूर्व भी कहा था कि सब-कुछ परिवर्तनीय है, जिसने पाँच वर्ष पूर्व भी कहा कि सब-कुछ बदल रहा है, जो अब भी यही कह रही है कि सब-कुछ परिवर्तनीय है, वह अवश्यमेव ही निरन्तर एक ही सत्ता है जो इस समस्त परिवर्तन की पुष्टि करती है। पचास वर्ष पूर्व उसने यही कहा था कि सब बदल रहा है, विगत कल से एक दिन पूर्व यही कहा था, विगत कल यही कहा, आज कहा कि परिवर्तन हो रहा है और आगामी कल तथा आगामी परसों भी यही पुष्टि करेगी कि सभी कुछ परिवर्तित होता जा रहा है।

केवल एक वही है जो अपरिवर्तनीय है और जो सबका अधिष्ठान है, आधार है। वह कौन है? वही आपकी वास्तविक पहचान है, आपका वास्तविक स्वरूप है। आप ही इस समस्त परिवर्तनीय के पीछे एकमात्र परिवर्तन रहित द्रष्टा हैं। आप ही इन सब परिवर्तनों के ज्ञाता और साक्षी हैं। आप स्वयं अदृश्य हैं; किन्तु इन सब बदल रही वस्तुओं की पुष्टि करने वाले आप ही हैं। और केवल आप ही इस प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं कि आप कौन हैं? मैं कौन हूँ?

आपमें क्षमता है कि आप भीतर प्रवेश कर सकें, मनन करें और ध्यान करें! अतः इस सम्पूर्ण ढाँचे में आप ही केन्द्रीय तत्त्व हैं जो अपरिवर्तनीय, चेतन, अभिज्ञ वास्तविकता है। स्वयं को अपने इसी स्वरूप में जानें, तब आप मुक्त हो जायेंगे। यही श्वेतकेतु के पिता ने उसे कहा था ह्रद्वह “हे श्वेतकेतु, अपने को वही शाश्वत, अमर, अनश्वर सत्ता जानो। तब तुम मुक्ति को प्राप्त कर लोगे।”

परम पावन गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के आशीर्वाद और भगवान् की कृपा आपको ह्रद्वह आपमें से हर एक को यह क्षमता प्रदान करें कि आप स्वयं को अपने वास्तविक रूप में ह्रद्वह अपने अपरिवर्तनीय, अमर, अनश्वर स्वरूप में पहचानें। इसी में आपका सर्वोच्च भला निहित है। भगवान् के आशीर्वाद आप सब पर हों !

दृढ़ता और आकांक्षा से सफलता

जब आध्यात्मिक आकांक्षी, जिज्ञासु और साधक मार्ग-दर्शन पाना चाहते हैं, जब वे अपनी कठिनाइयों और संशयों के विषय में कोई स्पष्टीकरण और उपदेश प्राप्त करना चाहते हैं, तो प्रायः यही उपदेश अन्ततः उन्हें दिया जाता है कि 'आप जो कर रहे हैं, वह करते रहें; किन्तु इसे धीरे-धीरे विकसित करते जायें। इसे और अधिक करते जायें, अपनी साधना को बढ़ाते रहें, और अपनी साधना में दृढ़ रहें। यही मार्ग है।'

धैर्यहीनता किसी भी प्रकार से सहायता नहीं करती। किसी भी यात्रा में आपने जहाँ पहुँचना होता है और जहाँ आप होते हैं, उसके बीच के अन्तर को मिटाना होता है। यदि आप गन्तव्य पर पहुँचने के लिए अधिक उत्सुक हैं, तो अपनी गति और कदमों को थोड़ा और बढ़ा दें। इसके साथ ही पहले से अधिक फासला तय करें। दिन-भर जितना चलते थे, उससे अधिक चलें अर्थात् अधिक घण्टे चलें। यदि अब तक दिन में छह घण्टे चलते रहे हैं, तो अब सात या फिर आठ घण्टे चलें। इस प्रकार यात्री अपने गन्तव्य तक अधिक शीघ्र पहुँचने की अपनी इच्छा पूर्ण कर सकता है।

इसी प्रकार आध्यात्मिक जीवन में साधक को अपने आध्यात्मिक पथ की साधना को धीरे-धीरे बढ़ाते जाना चाहिए और उस पर दृढ़ता से लगे रहना चाहिए। वह जप हो, ध्यान हो, स्वाध्याय हो, प्रार्थना हो

हो, अथवा अपने कर्तव्य कर्म करने के साथ-साथ किये जाने वाला नाम-स्मरण हो। किसी भी संशय को अपने पथ की बाधा न बनने दें। संशय हैं तो उन्हें रहने दें, आप अपनी साधना में और अधिक उत्साहपूर्वक लगे रहें। कई बार आपका यह कार्य ही संशय-निवारण कर देता है। कुछ देर पहले जो हमारी समझ में नहीं आ रहा था, अब जब हम अपनी साधना में लगे हुए हैं तथा इसे और भी विकसित करते जा रहे हैं, तो वह सब हमें समझ आने लग जायेगा।

अपने आध्यात्मिक जीवन में सभी सफल होना चाहते हैं। यह स्वाभाविक ही है। और, सफलता प्राप्त होती है अपनी साधना में लगे रहने से और उसे बढ़ाने से। आप जो कर रहे हैं, उसे करते रहें तथा उसे अधिक-से-अधिक बढ़ाते रहें। अपने जीवन-लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल होने का यह एक निश्चित मार्ग हैद्वन्द्वसतत, अबाध गति अपने लक्ष्य की ओर बनाये रखना, अपनी साधना को दिन-प्रति-दिन दृढ़ करते जाना और उसमें वृद्धि करते जाना, और आप निश्चित रूप से परम लक्ष्य प्राप्त कर लेंगे।

जैसे यह निरन्तरता और अग्रगामी विकसन ही है जो एक नदी को अन्ततः समुद्र में जा मिलाता है। भले ही मार्ग में कितनी भी बाधाएँ आती रहें, यह उन्हें पार कर जाती है और आगे बढ़ती रहती है। हमारे पूर्वजों ने भी इस सततता की तुलना तेल की धार से की है, जैसे एक बर्तन से दूसरे बर्तन में तेल निरन्तर अबाध रूप से बहता रहता है, इसी प्रकार व्यक्ति का आन्तरिक जीवन और साधना होनी चाहिएद्वन्द्व 'तैलधारावत्'।

इसके साथ ही अपनी आकांक्षा को जीवन्त और प्रदीप्त रखें। सन्त-महात्माओं ने इस तीव्र आकांक्षा की तुलना मानव के प्रतिदिन के

समाज और जीवन से की है। यदि आपकी भगवान् से मिलने की आकांक्षा इतनी गहन और तीव्र है, जितनी व्यभिचारिणी पत्नी की गुप्त रूप से अपने प्रेमी से मिलने के लिए होती है, जितनी लोभी कृपण की धन के प्रति होती है, जितनी कामी पुरुष की विषयों के प्रति होती है, तब आप निश्चित रूप से ईश्वरानुभूति प्राप्त कर लेंगे, प्रभु को पा लेंगे, परमात्म-साक्षात्कार कर लेंगे।

ऐसा ही भाव व्यक्त करते हुए एक रहस्यवादी सन्त ने आश्वासन दे कर कहा है कि 'यदि आपकी भगवान् के प्रति अपनी चाह की गहनता इन तीनों के समान होह्रह्रकुलटा पत्नी की अपने प्रेमी से गुप्त मिलन जैसी, लोभी की धन के प्रति जैसी और कामी की विषय-पदार्थों के प्रति जैसीह्रह्रऔर फिर भी आपको प्रभु-प्राप्ति न हो तो मैं दायित्व लेता हूँ, मैं अपनी प्रत्याभूति (गारंटी) देता हूँ।' पूर्व और पश्चिम के बहुत से अध्यात्मवादी ऐसी तीव्र आकांक्षा के साकार रूप थे।

यह सब कहने से तात्पर्य है कि हमें निरुत्साही नहीं होना चाहिए। हमें उस उत्कण्ठा की साकार प्रतिमा ही बन जाना चाहिए। अपने पूरे स्वभाव में उसी उत्कण्ठा की प्रतिमूर्ति बन जाना चाहिए। आध्यात्मिक जीवन और साधनाह्रह्रसभी का आन्तरिक सत्य यही है। साधक के हृदय का आन्तरिक सार-तत्त्व भी यही होना चाहिए।

हमें अध्यात्म के इस भक्तिपूर्ण, दृढ़तापूर्ण और आकांक्षापूर्ण जीवन के सत्यों के सम्बन्ध में गहनता से मनन करके लाभान्वित होना चाहिए। ईश्वर की कृपा और पूज्य गुरुदेव के आशीर्वाद हमें ऐसे आकांक्षी तथा ऐसे जिज्ञासु बनायें और इस योग्य बनायें कि हम इसे एक कसौटी के रूप में, एक आदर्श के रूप में अपने समक्ष रख सकें!

ऐसे मन के लिए प्रार्थना करें

उन परम श्रद्धेय, परम पूज्य और परम पावन गुरुदेव को श्रद्धापूर्ण प्रणाम करते हैं, जिन्होंने हमें इस प्रतिभासित संसार को बनाने वाले समस्त नाम-रूपों के स्वरूप की क्षणिकता को समझाया, जिन्होंने हमें सिखाया कि इन सब परिवर्तनशील नाम-रूपों से परे जो शाश्वत सत्ता है वही वास्तव में नित्य, परिपूर्ण, अनश्वर और चिरस्थायी है।

यदि हम ज्ञानोदय प्राप्त करना चाहते हैं, प्रबोधन प्राप्त करना चाहते हैं, दिव्य पूर्णता और मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं, तो हमें अपने समस्त विचारों का प्रवाह इस महान् सर्वातीत परम सत्ता की दिशा में मोड़ देना चाहिए। जीवन में सच्ची परिपूर्णता प्राप्त कर लेने की गारंटी इसमें निहित है कि हम अपने मन को, परम सत्ता की ओर लगातार अबाध रूप से अटूट धारा में प्रवाहित होने वाली विचारधारा में बदल दें। हमारी निजी सर्वोच्च भलाई और हमारे परम मंगल की प्राप्ति की गारंटी इसी में निहित है।

अतः आपको ऐसे मन की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिएहृदय एक ऐसा मन जिसमें अस्थायी, नाशवान् प्रतिपल विनाश की ओर अग्रसर होते हुए नाम-रूपों वाले इस संसार की ओर किंचित् भी अभिरुचि न हो; जिसमें उन पदार्थों की ओर बाह्य रूप से अग्रसर होने की

जरा-सी भी रुचि न हो जो क्षणिक, ऊपरी और स्थूल ऐन्द्रिय-सुख वाले तो हैं ही, साथ ही हमें अत्यधिक कष्ट और पीड़ा पहुँचाने में भी सक्षम हैं।

बुद्धिमान् व्यक्ति इन आकर्षक किन्तु भ्रामक विषय-वस्तुओं में मग्न नहीं होते। विवेकी व्यक्ति इन अल्प अनित्य सन्तुष्टियों को पा कर प्रसन्न नहीं होते रहते। निर्णय आपने करना है। आप बुद्धिमान् बनना चाहते हैं अथवा अपने-आपको मूर्ख सिद्ध करना चाहते हैं? इतने स्वाध्याय, सत्संग, विवेक और विचार के उपरान्त भी यदि आप अब भी मूर्ख ही बने रहते हैं, तो इसका अर्थ है कि आपका अज्ञान बहुत गहरा उतर चुका है।

हमें ऐसे मन की भी प्रार्थना करनी चाहिए जो सुख और दुःख में, मान और अपमान में सम रहे। अपमान और अन्याय को सहन करें। यदि कोई आपकी प्रशंसा करता है और यदि कोई आप पर दोषारोपण करता है अथवा आपके सम्बन्ध में अपमानजनक शब्द कहता है, तो आप दोनों स्थितियों में समान रहें। किसी से भी प्रभावित न हों। क्योंकि इस संसार में तिरस्कार और अन्याय अपरिहार्य हैं। यहाँ सब प्रकार के लोग हैं। यदि हम लोगों की अपने प्रति होने वाली नकारात्मक भावनाओं से उद्विग्न हो जाते हैं, तब तो हमारे उद्विग्न होते रहने का कोई अन्त ही नहीं रहेगा। आप कभी भी शान्ति से नहीं रह सकेंगे।

यह संसार सभी प्रकार के व्यक्तियों से मिल कर बना है। सात्त्विक व्यक्ति आपसे सम्मानपूर्वक व्यवहार करेंगे। वे आपकी पीठ पीछे भी आपके विषय में सम्मानसूचक शब्दों का ही प्रयोग करेंगे। वह आपके सामने कुछ तथा पीठ पीछे कुछ और नहीं कहेंगे। अनजान लोगों के समक्ष भी वह आपके सम्बन्ध में सम्मानपूर्वक ही बात करेंगे। वह अनजान लोगों को भी बतलाना चाहते हैं कि अमुक व्यक्ति माननीय है।

वे आपका ऐसा चित्र प्रस्तुत करते हैं जो आपके प्रति दूसरों में आदर-भाव उत्पन्न कर देता है।

इस प्रकार सात्त्विक व्यक्ति सदैव सम्मान प्रकट करता है, दूसरों के सम्बन्ध में आदरपूर्वक बात करता है और बदले में मन में यह चिन्ता नहीं करता कि अन्य लोग उसके विषय में कैसा कहते हैं। सात्त्विक व्यक्ति स्वयं अपने लिए, सम्मानसूचक अथवा अपमान जनक ढंग को एक-समान समझता है; क्योंकि उनके अनुसार दोनों का ही कोई मूल्य नहीं है। वह एक-जैसे ही हैं, क्योंकि अस्थिर मानवता अस्थिर ही है। यह सदा अपनी मनःस्थिति और भाव बदलती ही रहती है। जो लोग अभी आपकी प्रशंसा में धरती-आकाश एक कर रहे हैं, वही थोड़ी देर बाद यदि अप्रसन्न हो जायें, तो आपके लिए कटु वचन बोलने लग जाते हैं।

इसलिए आपको भगवान् से ऐसे मन के लिए प्रार्थना करनी चाहिए जो सदा एक-समान रहे, भले ही लोगों द्वारा कैसा भी व्यवहार प्राप्त हो। एक पारसी कहावत है—“हे प्रभु, मुझे ऐसा हृदय दो कि मैं अत्यधिक कष्टपूर्ण समय को भी सदैव शान्त और प्रसन्न मन से बिताऊँ। अनुकूल परिस्थितियों में, मैं जैसा प्रसन्न रहता हूँ, वैसा ही उनके प्रतिकूल हो जाने पर भी रहूँ।” सच्चे भक्त के, सात्त्विक भक्त के यही चिह्न हैं।

एक योगी, जो भीतर से भगवान् के साथ जुड़ा हुआ है, सदैव सुख का उपभोग करता है। और वह सुख क्या है? वह है सन्तोष का सुख। एक अँगरेजी कहावत है कि ‘सन्तोष एक सतत सुख है।’

अतः हम इस प्रकार का अन्तरमन विकसित करें—सदैव प्रसन्न, सदा समान, सुख और दुःख को सदा समान रूप से ग्रहण करते हुए,

तिरस्कार और अन्याय को अथवा आदर और सम्मान को सदा एक ही तरह ग्रहण करते हुए हृदयसदैव आन्तरिक समता की अवस्था में, सन्तोष और प्रसन्नता से रहते हुए। परमात्मा से हमें यही माँगना चाहिए और परम पावन गुरुदेव से भी हमें इसी के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

स्वयं को निष्पक्षता से जाँचें

उस परम, शाश्वत आदि तत्त्व, वैश्व चैतन्य परमात्मा को प्रणाम है, जो शुभ हैं, सुन्दर हैं, कल्याणकारी हैं, उन्नयनकारी प्रकाशदाता और मोक्षप्रदाता हैं। उन्हें श्रद्धापूर्वक नमन!

परम पावन श्रद्धेय गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज को प्रेमपूर्वक प्रणाम करते हैं। उनके जीवन का उद्देश्य समस्त जिज्ञासु साधकों को उनकी रुचियों, स्वभाव, योग्यताओं और क्षमताओं के अनुसार भिन्न-भिन्न विधियों से उस दिव्य सत्ता के निकट से निकटतम ले कर जाना था।

यह जानते हुए कि मानव-स्वभाव विविधताओं से पूर्ण है, योग्यताओं में भी परस्पर सभी भिन्न हैं, और यह भी जान कर कि सभी एक-जैसी उच्च स्तर की शिक्षा के लिए तैयार नहीं होते, शिक्षक सबको उनके अनुकूल ही शिक्षा देते हैं। भगवान् की कृपा हम पर हो कि हम गुरु भगवान् श्री स्वामी शिवानन्द जी के उपदेशों को ठीक और उचित ढंग से समझ सकें।

उपनिषदों में एक 'तीन द' की कथा आती है। 'द' संस्कृत वर्णमाला का एक अक्षर है। एक मनुष्य, देवता और दानव एक बार सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के पास ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए उपदेश लेने की इच्छा से गये। गहन ध्यान से बाहर आ कर वे उनमें से प्रत्येक पर दृष्टि डालते हैं और सबको एक-समान ही उपदेश प्रदान करते हैं। और उपदेश यह है

कि अपने-आपको देखते हुए 'द' शब्द का उच्चारण करो। और प्रत्येक अपने स्वभाव, गुण और रुचि के अनुसार उस उपदेश का अर्थ समझ लेता है।

उपनिषद् के एक व्याख्याकार ने कहा हैद्वन्द्व "यद्यपि यह उपदेश तीन भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को दिया गया था; किन्तु यही तीनों मनुष्य-वर्ग के लिए भी लागू हो सकते हैं, क्योंकि मनुष्य के भीतर ये तीनों प्रवृत्तियाँ निहित हैं। मनुष्य में तीनों प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैद्वन्द्वदैवी, दानवी और मानवी। अतः व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के तीनों पहलुओं को समझना चाहिए और यह भी समझना चाहिए कि अपने लाभ के लिए ज्ञान को कैसे समझना और लागू करना है। ध्यान दें, अपने निजी भले के लिए ! आध्यात्मिक सत्त्यों को केवल अपने निजी भले के लिए लागू करना चाहिए।

यहाँ स्पष्टता की आवश्यकता है, विवेक की आवश्यकता है। हम सब इस कहावत से परिचित हैं कि शैतान भी अपनी कार्यसिद्धि के लिए धर्मग्रन्थों का उद्धरण दे सकता है। सर्वोच्च शास्त्रीय उद्धरणों को भी सबसे गलत ढंग से उपयोग में लाया जा सकता है। उनको दिव्य, दानवी और मानवीय, किसी भी तरीके से उपयोग में लाया जा सकता है।

उदाहरण के लिए, मेरे स्नानागार में एक प्लास्टिक चित्र लगा हुआ है जिसमें 'मिकी माउस' (एक चूहा) का चित्र है जो एक आदमी द्वारा खींच कर चलायी जाने वाली नौका में बैठा हुआ है और नौका बड़ी शीघ्र जल-प्रपात में गिरने ही वाली है, इसको शीर्षक दिया गया है 'दृढ़प्रतिज्ञता'। हमें दृढ़प्रतिज्ञ हो कर लगे रहना चाहिए। कैसे? जब हम अन्तिम बिन्दु पर पहुँचते हैं और कहने लगते हैं, 'न, न, अब और लगे रहने का कोई लाभ नहीं है, मैं पराजित हो गया हूँ, मैं बाजी हार चुका हूँ, अब बस चट्टान से टकरा कर चूर-चूर होने ही वाला

हूँ ह्रस्वसे-ऐसे विचार आने लगते हैं ह्रस्व उस समय दृढ़प्रतिज्ञता आपके प्रयत्न का अन्तिम बिन्दु है, और दृढ़प्रतिज्ञता के प्रयत्न का वह अन्तिम बिन्दु हो सकता है किसी प्रकार आपको उस भयंकर लहर से बचा कर निकाल दे जिससे कि आप गहराइयों में गिरने ही वाले थे। आपको यों ही सरलता से छोड़ नहीं देना चाहिए।

किन्तु यह 'यों ही आशा छोड़ नहीं देना' के अपने सूक्ष्म भेद हैं। यह सदा एक ही ढंग से प्रकट नहीं होते; यह अत्यन्त सूक्ष्म रूप से भिन्न-भिन्न ढंगों से आते हैं ह्रस्वदिव्य, दानवी और मानवीय। उदाहरण के लिए सिद्धार्थ, जो कि उस समय एक तपस्वी और मुनि बन चुके थे और योग के द्वारा आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए अत्यन्त घोर तप कर रहे थे, बार-बार अथक प्रयत्न करने पर भी जब वह इसे प्राप्त नहीं कर पाये, तो उन्होंने कहा कि यह मार्ग ठीक नहीं है, एक अन्य मार्ग ह्रस्वमध्यम मार्ग भी है। उन्होंने मध्यम मार्ग को अपना लिया, किन्तु उससे कुछ उपलब्धि होती प्रतीत नहीं हुई।

तब एक भीषण निश्चय वह अपने मन में कर लेते हैं, वह बोधगया जाते हैं, बोधी वृक्ष के नीचे बैठ जाते हैं और एक भीषण प्रतिज्ञा लेते हैं, "अब मैं यहाँ बैठ गया हूँ। अब इस स्थान को तब तक नहीं छोड़ूँगा जब तक प्रबोधन प्राप्त नहीं कर लेता। भले ही मुझे इसका कुछ भी मूल्य क्यों न चुकाना पड़े। भले ही शरीर सूख जाये, चाहे मांस और त्वचा गिर जाये, हड्डियाँ चूर-चूर हो कर चूर्ण क्यों न बन जायें, सिद्धार्थ अब यहाँ से हिलेगा नहीं जब तक कि उसने जो प्राप्त करने का निश्चय किया है, उसे प्राप्त नहीं कर लेता।"

भीषण और कठोर प्रतिज्ञा! देवता तक स्तब्ध हो गये, "सिद्धार्थ जब तक प्रबोधन प्राप्त नहीं कर लेता, अपने स्थान से हिलेगा नहीं!"

महान् संकल्प है यह। यह आध्यात्मिक है। यह सात्त्विक है। यह दिव्य संकल्प है। इसे स्वयं भगवान् की शक्ति प्राप्त है।

इसी ढंग से इटली के एक भाग सिसली में एक अत्यन्त भयंकर राक्षसी-परम्परा प्रचलित है जिसे कुलबैर (वैंडेटा) कहते हैं। यदि किसी एक परिवार का कोई व्यक्ति किसी दूसरे परिवार के व्यक्ति द्वारा घायल कर दिया या मार दिया जाये, तो पहला परिवार तब तक शान्ति से नहीं बैठता था जब तक हत्या का बदला हत्या करके ले नहीं लिया जाये। तब दूसरा परिवार उसका प्रतिशोध लेता है; और प्रतिशोध लेने की यह प्रक्रिया वंशानुगत चलती रहती है। दूध-आँख के बदले आँख, दाँत के बदले दाँत! यह भी दृढ़प्रतिज्ञता है, किन्तु यह भयंकर है, विनाशकारी प्रवृत्ति की यह तामसिक दृढ़प्रतिज्ञता है, नियम इसका भी वही है, लगे रहो, कभी भी पूरा किये बिना छोड़ना नहीं। किन्तु इसके परिणाम विनाशकारी हैं।

पुनः मानव एक और रूप में दृढ़प्रतिज्ञ हो सकता है। दूध-अपने कार्य-पूर्ति के क्षेत्र में जैसी परिस्थितियों का व्यक्ति निर्माण करना चाहता है, उसी में लगे रहना, उसी पर दृढ़ रहना। ऐसे लोग कहेंगे दूध-“गुरु कुछ भी कहें, हमारे पूर्वजों ने कुछ भी कहा हो, अनुभूति-प्राप्त सन्त-मनीषियों ने जो-कुछ भी कहा हो, वह किसी पुरातन युग के लिए ठीक होगा, किन्तु अभी उसमें कुछ अच्छाई नहीं है। उस समय वह बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण होगा, किन्तु अब समय बदल गया है। सब-कुछ बदल गया है, लोग बदल गये हैं। इसलिए अब हमें जो सही लगता है, वही करना चाहिए।”

यह एक ऐसी विचित्र हठधर्मिता है जो अत्यन्त सूक्ष्म रूप से छलपूर्ण और भ्रामक है, क्योंकि जब कि यह शत-प्रति-शत सही है कि समय परिवर्तित हो गया है, हम यह नहीं कह सकते कि मानव-स्वभाव

भी परिवर्तित हो गया है। मानव-स्वभाव अब भी वही है जो वेद-उपनिषदों के समय में था, जो रामायण-महाभारत के समय में था। मनुष्य की प्रकृति आज भी वैसी ही है। बाह्य रहन-सहन में भले ही परिवर्तन आ गया है, किन्तु जो-कुछ हम पुराणों में देखते हैं, वही सब-कुछ आज भी हमारे सामने वैसा-का-वैसा ही है और वही व्यक्ति के निजी व्यक्तिगत स्तर पर तथा सामूहिक मानवीय पारिवारिक, सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर भी है। यह सब बातें देखने और समझने की आवश्यकता है। एक विवेकशील व्यक्ति यह सब देखते, जानते और समझते हुए जाग्रत हो जाता है, सावधान हो जाता है।

आपको स्वयं अपने प्रति निष्पक्ष और तटस्थ होने की तथा एक ओर खड़े हो कर द्रष्टा रूप से स्वयं को देख सकने की कला और विज्ञान को सीखना चाहिए। आपको निश्चित रूप से स्वयं में क्षमता लानी चाहिए कि अपने-आप का तटस्थ हो कर मूल्यांकन करें और निश्चित परिणाम पर पहुँचें। आपको स्वयं अपने में यह योग्यता लानी चाहिए कि आप निष्पक्ष हो कर अपने विचारों, भावनाओं, मनोदशाओं, मनोवृत्तियों और कार्यों का सही मूल्यांकन कर सकें। क्या वह दिव्य हैं, दानवी हैं या मानवीय हैं? यह इतना सरल नहीं है, क्योंकि मानव-स्वभाव में आत्म-समर्थन नाम की एक ऐसी गहन प्रवृत्ति है जिससे स्वयं को ऊपर उठाना अत्यन्त आवश्यक है।

आपको एक ऐसा मध्यम दृष्टिकोण अपनाना होगा जिसमें न तो अपना आत्म-समर्थन करें और न ही आत्म-निन्दन। आप न तो यह बनें, न ही वह। स्वयं को तटस्थ रखते हुए निष्पक्ष, द्रष्टा भाव बना कर रखें। तब आप सही निष्कर्ष पर पहुँच पायेंगे।

लूसिफर एक देवपुरुष था। वह किन्हीं निष्कर्षों पर पहुँचा। जब उसे कहा गया कि वह गलत है, तो वह अपने विचार से रत्ती-भर भी

हटने को तैयार नहीं हुआ। अतः गेब्रियल को उसे अधोलोक में फेंक देना पड़ा। और अब वह मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। वह शैतान कहलाता है। क्यों? क्योंकि उसने परिवर्तित होने से इन्कार कर दिया। अतः आवश्यकता पड़ने पर उच्चतर आदर्शों के लिए अपने स्थान से हिलने को इन्कार करना शैतानी प्रवृत्ति है। इसका अर्थ यह हुआ कि आप अनजाने ही शैतान के शिकंजे में फँस गये हैं। आप भगवान् के प्रभाव में नहीं हैं।

शैतान की उपस्थिति दिखायी नहीं देती, यह इतनी सूक्ष्म है कि आपकी पकड़ में नहीं आती। यह भगवान् से प्रतिस्पर्धा है। भगवान् की विद्यमानता भी सूक्ष्म और अदृश्य है। शैतान कहता हैद्वह “मैं भी आपकी तरह ही सूक्ष्म और अदृश्य हो सकता हूँ।” संस्कृत में एक शब्द है जिसका अर्थ हैद्वह “जो तुम कर सकते हो, वह मैं भी कर सकता हूँ। मैं हर तरह से तुम्हारे बराबर हूँ।”

अतः हमें अपने अन्तर में उतर कर भगवान् से सच्चे हृदय से प्रार्थना करनी चाहिए कि वह हमें स्पष्ट मार्ग दर्शाये। यदि कोई यह कहते हुए कि उसका कार्य सही है, अपने कार्य का औचित्य बताता है तो उसे निश्चित रूप से स्वयं से यह प्रश्न पूछ कर अन्तर-निरीक्षण करना चाहिए, “मैं ऐसा क्यों कह रहा हूँ? इस व्यवहार पर अटल रहने के पीछे क्या उद्देश्य छिपा है? मुझे इससे क्या लाभ होने वाला है? क्या ऐसा न होने से मेरी किसी भी प्रकार आध्यात्मिक उन्नति में बाधा आयेगी?”

इसीलिए गुरुदेव सदा कहा करते थेद्वह “अपने अन्तर्निहित उद्देश्यों का निरीक्षण करो।” क्योंकि वह अन्तर में हैं और सूक्ष्म हैं। उन्हें देखना इतना सरल नहीं। अतः भगवान् की कृपा होने से ही यह हो सकता है। परमात्मा और श्रद्धेय गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी हमारी सहायता करें कि हम स्वयं को समझ सकें और ऐसी समझ-बूझ से उन्नति करते हुए परम धन्यता को प्राप्त करें!

ईश्वर-चिन्तन में निवास करें !

परम पूज्य श्रद्धेय गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी अपने अनेकों उपदेशों में सदैव ईश्वर की सर्वव्यापकता के प्रति निरन्तर जागरूक रहने की अनिवार्यता पर बल देते रहे कि हममें से प्रत्येक के भीतर भगवान् एक सदा-विद्यमान सत्ता हैंद्वद्ध “तुम सच्चिदानन्दघन हो। तुम सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हो। तुम सबके अन्तर्वासी हो।” वे चाहते थे कि हम प्रतिदिन इस प्रकार स्तुति-गान करें, जिससे कि भगवान् की अपने अन्तर और बाह्य सर्वत्र तथा अपने हृदयस्थ भी उपस्थिति की जागरूकता को प्रतिपल ताजा कर सकें।

क्योंकि जितना हम सतत ईश्वर-चिन्तन में निवास करेंगे, उतना ही अधिक भगवान् हमारे निकट सतत रूप में रहेंगे। जितना अधिक निरन्तरता से ईश्वर-चिन्तन को बनाये रखेंगे, उतना ही अधिक निरन्तरता से हम उनकी ओर बढ़ते रहेंगेद्वद्धउनकी दिशा में अग्रसर होते ही रहेंगे, जब तक कि अन्ततः ईश्वरानुभूति प्राप्त नहीं कर लेते।

जितना अधिक हम उनका शाश्वत सत्ता के रूप मेंद्वद्ध अपरिवर्तनीय, अनादि-अनन्त, सर्वत्र विद्यमान सत्ता के रूप में चिन्तन करते रहते हैं, जितना अधिक हम उनमें निरन्तर अपरिवर्तनशील शाश्वत सत्ता के रूप में निवास करते हैं, उतना ही अधिक हम इस परिवर्तनशील नाम-रूपों के बाह्य जगत् से दृष्टि मोड़ कर जैसे वह वास्तव में

हैंद्वहअर्थात् अस्थायी अवास्तविकताओं, क्षणिक प्रतीतियों के रूप में देखने लग जाते हैं, ऐसी वस्तुओं के रूप में जिनका अस्तित्व ही अस्थायी है। उनके नाम-रूप और अवस्था की सत्ता किसी समय-विशेष में ही अस्थायी और परिवर्तनशील नहीं है, अपितु उनकी सत्ता स्वयं में ही अस्थायी है। हम देखना प्रारम्भ कर देते हैं कि प्रत्येक वस्तु समाप्ति की ओर जा रही है और एक दिन इन सबका अस्तित्व मिट जायेगा।

इस प्रकार परमात्मा की सत्ता हमें इस परिवर्तनशील जगत्-प्रपंच की अनिवार्यताद्वहजो हमें भ्रमित करके इनका वास्तविक होना लगाती हैद्वहके ऊपर विजय पाने में हमें समर्थ बना देती है। प्रतिदिन प्रातः जब हम सो कर उठते हैं, तो इन सबको देखते हैं। कल भी हमने उन्हें देखा था, आज भी देख रहे हैं और आगामी कल भी हम उन्हें देखेंगे। दिनों, महीनों और वर्षों से हम इन सबको देखते आ रहे हैं, इसलिए हम इन्हें वास्तविक ही समझते हैं।

इस प्रकार हमारे इस अनुभव की पुनरावृत्ति उनके स्थायी रूप से वास्तविक होने का दावा करती है। किन्तु उनके इस दावे को ही परीक्षण का पैमाना बना लिया जाये, तो उनकी पुनरावृत्ति होना ही उनके दावे के विरुद्ध जाता है; क्योंकि पुनः होने का अर्थ ही उनका स्थायी न होना सिद्ध कर देता है, उनकी असत्यता और अवास्तविकता सिद्ध कर देता है।

यदि वह कहते हैंद्वह“क्या तुम देखते नहीं कि जब भी तुम सो कर उठते हो, हम तुम्हारे सामने होते हैं? तुम्हारे जीवन-भर से, जन्म से ले कर अब तक प्रतिदिन तुम हमें अपनी आँखों के सामने अनुभव करते हो?” आप प्रत्युत्तर दे सकते हैंद्वह“हटो, रहने दो! प्रतिदिन, प्रत्येक चौबीस घण्टों में जैसे ही मैं सो जाता हूँ, तुम समाप्त हो जाते हो। इस

प्रकार जीवन-भर, जन्म से ले कर अब तक प्रतिदिन निद्रा में चले जाने पर तुम मेरे लिए अस्तित्वहीन सिद्ध होते हो। अतः मैं चेतना की निद्रा अवस्था के अपने निजी अनुभव के आधार पर जानता हूँ कि वास्तव में तुम्हारा अस्तित्व नहीं है। क्योंकि तुम्हारा अस्तित्व कुछ समय के लिए तो होता है, किन्तु दूसरे समय अदृश्य हो जाता है, समाप्त हो जाता है; इसलिए यह क्षणिक है, अतः इसे वास्तविक नहीं कहा जा सकता। यह प्रतिदिन स्वयं ही खण्डित हो जाता है। इसलिए तुम केवल अस्थायी वास्तविकता हो। स्थायी वास्तविकता के रूप में जाने जाने का तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। अस्थिरता तुम्हारा स्वभाव है; तुम्हारी प्रकृति परिवर्तनशील है।”

इस प्रकार बाह्य जगत् के अनुभव का हमें अपनी निजी गहन आत्मपरक चेतना के आधार पर, हमारे प्रतिदिन होने वाले व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर निरीक्षण करना पड़ेगा। इसीलिए यह कहा जाता है कि केवल ब्रह्म ही सत्ता है, केवल वही वास्तविक है। यह अनादि, अपरिवर्तनीय, शाश्वत तथा अनश्वर है और जब आप उसकी अनुभूति में प्रवेश करते हैं, तो आप भी शाश्वत हो जाते हैं। आप तब क्षणिक प्रपंच मात्र नहीं रह जाते। तब आप उस परम सत्ता के महिमामण्डित स्वरूप का भाग ही बन जाते हैं।

और जैसा कि हमने कहा, इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जितनी अधिक निरन्तरता से हम ईश्वर के सतत चिन्तन की स्थिति में स्वयं को रखते हैं, उतनी ही अधिक निरन्तरता से भगवान् सतत रूप से हमारे सन्निकट होते हैं। और जितना अधिक आप ईश्वर-चिन्तन की इस साधना को सतत अटूट बनाये रखते हैं, उतना ही अधिक शीघ्र आप उस सत्ता की दिशा की ओर बढ़ना आरम्भ कर देते हैं।

यही साधना का सत्त्व है। यही योग का केन्द्रीय तत्त्व है। यही ध्यान का लक्ष्य है। यही कारण है कि हमारे महान् आध्यात्मिक गुरु जनों ने भगवान् के सतत स्मरण, नाम-जप करने के लिए सदैव बल दे कर कहा है। हम अपने आन्तरिक आध्यात्मिक जीवन के इस तथ्य पर विचार करें और उससे लाभान्वित हों, आशीर्वादित हों! परम पावन गुरुदेव के आशीर्वाद तथा प्रभु-कृपा हमें इस सत्य पर सतत चिन्तन करने में सक्षम बनाये, जिससे कि हमारा परमोत्कर्ष हो! भगवान् की कृपा आप सब पर हो!

आन्तरिक शान्ति का रहस्य

उज्वल आत्मन्! गुरु महाराज श्री स्वामी शिवानन्द जी द्वारा बताये गये सेवा, भक्ति, ध्यान और आत्मज्ञानपूर्ण आध्यात्मिक जीवन जीते हुए साधना में संलग्न प्रिय साधक जन! आप सेवामय जीवन जी रहे हैं! निःस्वार्थ और निष्कारण भाव से; किसी इच्छा अथवा निजी लाभ के उद्देश्य से रहित हो कर आप भगवान् की कृपा-प्राप्ति के लिए भक्ति और उपासनामय जीवन जी रहे हैं; वास्तविक परम सत्ता के उच्चतर दर्शन तथा गहन से गहनतर ज्ञान-प्राप्ति की ओर अग्रसर होने वाला दैनिक ध्यानमय जीवन जी रहे हैं; तथा अज्ञान का आवरण हटाने के लिए, प्रकाश की प्राप्ति के लिए, प्रबोधन और आत्मज्ञान की उपलब्धि के लिए आप एक सतत दार्शनिक विवेक और विचारपूर्ण जीवन जी रहे हैं। क्योंकि गुरुदेव ने इन तीनों मार्गों में परस्पर सामंजस्य को उद्घोषित करते हुए सबको एक सम्पूर्ण योग के रूप में समन्वययोग को प्रस्तुत किया है।

गुरुदेव इन सबको अपने में सम्मिलित किये हुए थे। वे ज्ञानी थे। वह पराभक्त थे। वह हठयोगी भी थे और अपने सम्पूर्ण जीवन-भर यदि वे निःस्वार्थ कर्मयोगी नहीं रहे, सबके सेवापरायण, सबके सेवक नहीं थे, फिर और क्या थे। जो-कुछ भी उन्होंने उपदेश दिया, जो-कुछ भी उन्होंने सिखाया, उस सबकी वे स्वयं साकार प्रतिमा थे। 'समत्वं योग उच्चते' (मन की समता ही योग कहलाती है), 'योगः कर्मसु कौशलम्' (यह कर्म में कुशलता ही योग है),

‘योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः’ (चित्त की वृत्तियों का निरोध योग है); यह सब-कुछ उनमें सन्निहित था। उनका मन पूर्णतया उनके नियन्त्रण में था। वे जानते थे कि किस प्रकार समस्त क्रियाकलापों के मध्य में रहते हुए भी उनसे अतीत, सदा शान्त, सदा निष्क्रिय रहा जाता है। उन्हें कर्म में अकर्म का रहस्य ज्ञात था और इसके साथ ही हमने उनमें एक अद्भुत, एक विलक्षण परिपूर्ण समता का उदाहरण पाया। वह साक्षात् स्थितप्रज्ञ थे। हमने गुरुदेव को ‘तुल्यनिन्दास्तुतिमौनी सन्तुष्टो येन केनचित्’ (जो निन्दा-स्तुति को समान समझने वाला और जिस किसी प्रकार से भी सन्तुष्ट हो) पाया। हमने उन्हें सदा ‘सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ’ (जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःख में समान) में सम ही पाया।

वे सदा एक-समान थे, किसी भी वस्तु-परिस्थिति से कभी भी स्वयं को प्रभावित न होने देते हुए अथवा अपनी आन्तरिक समता की स्थिति को बदलने न देते हुए, अपने निज-आत्मस्वरूप में दृढ़तापूर्वक स्थित रहने की अवस्था को परिवर्तित न होने देते हुए अथवा परम शाश्वत सत्ता के साथ अपने एकत्व की परम योग की अवस्था में परिवर्तन न होने देते हुए। हम ‘योगस्थः कुरु कर्माणि’ (योग में स्थित हुआ) व्यक्ति देखना चाहते थे। गुरुदेव में हमने उसे पाया। वे सदा योग में स्थित थे तथा सदा ईश्वर के प्रकटीकृत विराट् रूप की सेवा में सक्रिय थे। हमने अपनी आँखों से यह देखा है।

इस समत्व का रहस्य क्या है? ये महापुरुष किस प्रकार स्वयं को परम शान्ति की स्थिति में बनाये रखते हैं? क्या यह उनके ज्ञान के कारण है? क्या उनकी भक्ति इसका कारण है? अथवा क्या ध्यान के फलस्वरूप वे ऐसा कर पाते हैं? हाँ, इन सभी के कारण ऐसा हो पाया।

क्योंकि गुरुदेव में हम इन सभी को पाते हैं—द्वन्द्वपरा भक्ति, परम ज्ञान और परिपूर्ण ध्यानद्वन्द्व और इसका परिणाम है उनकी परिपूर्ण प्रशान्त अवस्था।

भिन्न-भिन्न प्रतीत होने वाले मार्गों पर चल कर प्रबोधन और परम चैतन्य की अवस्था, ईश्वरानुभूति की अवस्था पर पहुँचे हुए यह महान् व्यक्ति एक-समान ही अवस्था में स्थित हुए कैसे प्रतीत होते हैं? उनका आन्तरिक आध्यात्मिक तत्त्व क्या है, जो उन्हें इस संसार के निरन्तर परिवर्तनशील द्वन्द्वों के आक्रमण से अप्रभावित रखता है?

वह तत्त्व एक ही है। ज्ञानी इस पूर्णज्ञान और अवबोधन में स्थित है कि 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' (केवल ब्रह्म ही सत्य है, संसार असत्य है)। इस अनुभूति की जागरूकता में वह पूर्णरूपेण अवस्थित है। केवल एकमेव अपरिवर्तनशील परम सत्य है। अन्य सब-कुछ विनाशशील नाम-रूपों का खेल मात्र है। यह एक निरन्तर परिवर्तनशील प्रतिभासित प्रपंच मात्र है। इन्द्रियों द्वारा अनुभूत प्रत्येक विषय-वस्तु परिवर्तन, क्षय और परिसमाप्त होने वाली है—द्वन्द्व 'यदृश्यं तत्राशयम्' (प्रत्येक दृश्य पदार्थ विनाशशील है)। पाँचों में से किसी भी इन्द्रिय द्वारा देखी, सुनी, चखी, स्पर्श की जाने अथवा सूँधी जाने वाली वस्तु परिवर्तन, क्षय और विलयन को प्राप्त होने वाली है और यह सब हमारी आँखों के सामने होता है।

इसलिए, इस जागरूकता में पूर्णतया स्थित रहने के कारण यदि उनके सामने वस्तु-पदार्थों में परिवर्तन होता है, व्यक्ति में या परिस्थितियों में बदलाव आता है, तो वह अप्रभावित ही रहते हैं। उनकी आँखों के सामने यदि वस्तुएँ क्षय हो जाती हैं, तो भी किंचित् मात्र भी प्रभावित नहीं होते। और यदि वस्तुएँ उनके देखते-देखते समाप्त हो जाती हैं, तब भी उन पर इसका जरा-सा भी प्रभाव दिखायी नहीं देता। वे

जानते हैं कि जीवन का प्रवाह ही ऐसा है। अतः ज्ञान द्वारा उपलब्ध प्रशान्त अवस्था में ही वे स्थित रहते हैं। 'तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि' (इस बिना उपाय वाले विषय में तू शोक करने के योग्य नहीं है)।

उन्हें यह ज्ञान है कि इस संसार का स्वभाव ही ऐसा है। सदा परिवर्तनशील है, आने-जाने वाला है, यहाँ कुछ भी स्थायी नहीं है, अतः वे सदा परिपूर्ण समता की स्थिति में रहते हैं। ज्ञानी की अन्तःस्थिति यही है। 'तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता' (उसकी बुद्धि स्थिर है) किसकी? जिसकी अन्तःस्थिति दृढ़ता से स्थित रहती है, तितिक्षा और निष्ठापूर्ण दृढ़ता में अवस्थित रहती है, जो कभी भी विचलित नहीं होती, किञ्चित् भी उत्तेजित नहीं होती, कभी भी क्षुब्ध नहीं होती, उसकी बुद्धि स्थिर है।

क्योंकि केवल ऐसी अद्भुत प्रशान्त अवस्था प्राप्त कर लेने पर ही वे ध्यान के द्वारा ईश्वरानुभूति प्राप्त कर पाये थे। जिसकी आन्तरिक अवस्था विक्षुब्ध हो, जो निरन्तर असन्तुलित मानसिक अवस्था में रहता हो, उस व्यक्ति के लिए वास्तविक ध्यान असम्भव है। जब तक सम्पूर्ण उत्तेजनाओं को समाप्त नहीं कर दिया जाता, तब तक वास्तविक ध्यान सम्भव नहीं हो सकता। यदि मन का स्वभाव ही उत्तेजित हो जाना है, तो वह ध्यान नहीं कर सकता। उत्तेजना मन की दुर्बलता है। षट्सम्पद में एक सद्गुण शम है जो परिपूर्ण शान्त, अविक्षुब्ध और समतापूर्ण आन्तरिक अवस्था है। अन्तःकरण की परिपूर्ण शान्त, अनुत्तेजित और सम स्थिति।

अतः वे जानते हैं कि 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या', उन्हें ज्ञात है कि सब-कुछ स्वप्नवत् है, उन्हें पता है कि एक दिन यह सब-कुछ चला जाने वाला है। और वे निरन्तर इस जागरूकता में हैं। यह केवल बौद्धिक

ज्ञान ही नहीं है। पुस्तकों अथवा प्रवचनों से एकत्रित की हुई जानकारी पर आधारित तथ्य न हो कर उनकी स्वतः अनुभूत अपरोक्ष अनुभूति पर आधारित तथ्य है। यही पूर्णतया स्थिर ज्ञानी का रहस्य है।

और भक्त के सन्दर्भ में ब्रह्मभगवान् का भक्त बहुत पहले ही ब्रह्म इस आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करने से पूर्व ही यह निश्चय कर लेता है कि केवल भगवान् ही एक ऐसी सत्ता हैं, जिनके लिए जीवन जिये जाने योग्य है। केवल एक भगवान् ही वास्तविक मूल्यवान् तत्त्व हैं। भक्त के अनुमान में केवल भगवान् का ही मूल्य है। अन्य सब-कुछ अल्प है; उनका कुछ भी मूल्य नहीं है, शून्य के समान हैं सब। भगवान् ही एक और केवल मात्र एक परम सत्य हैं।

इसलिए वह केवल भगवान् से ही सम्बन्ध रखते हैं। वे जानते हैं कि अन्य कुछ भी महत्त्वपूर्ण नहीं है। कुछ भी होता रहे, कुछ अन्तर पड़ने वाला नहीं है। केवल भगवान् का ही महत्त्व है, अन्य किसी का भी नहीं। भगवान् की तुलना में सब-कुछ शून्य के, न के बराबर है। इसलिए भगवान् के भक्त की दृष्टि में भगवान् और बस केवल एकमात्र भगवान् का ही महत्त्व है। उन्हीं का मूल्य है। अन्य सब तुच्छ हैं, गौण हैं। “वह सब जैसे भी हैं, रहने दो, रहने दो उन्हें, मुझे चिन्ता नहीं, मुझे उनकी क्या चिन्ता?”

इसलिए, भगवान् को अपना सब-कुछ, अपना सर्वस्व बना लेने से, एकमात्र प्राप्तनीय परम तत्त्व मान लेने से, निरन्तर केन्द्रीय स्थान पर रखने योग्य मान लेने से, फिर अन्य सब-कुछ सच्चे भगवद्-प्रेमी के लिए निरर्थक हो जाता है। और फिर भले ही कुछ भी होता रहे, वह उद्विग्न नहीं होता। वह कहता है ब्रह्म “हाँ ठीक है, किन्तु यह इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। जो-कुछ भी होता है, होता रहे, मैं सब सहन कर लूँगा। क्योंकि मेरा

सम्बन्ध इन सबसे नहीं, मेरा नाता तो भगवान् से है, मेरा तो बस उस परम दिव्य सत्ता से ही सम्बन्ध है।”

इस प्रकार उस भगवान् नाम की एकमात्र परम सत्ता के महत्त्व को दृढ़तापूर्वक मान लेने पर तथा यह जानते हुए कि अन्य सब अल्प वस्तु-पदार्थ महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, क्षुब्ध हो जाने, चिन्तित हो जाने योग्य नहीं हैं, भगवान् का भक्त सदैव शान्ति की अवस्था में रहता है; सभी परिस्थितियों में आन्तरिक सन्तुलन बनाये रखता है; भले ही उसे, या जगत् में, अथवा अन्य किसी को भी कुछ भी होता रहे, वह शान्तावस्था में ही रहता है। “केवल भगवान् ही सत्य हैं, केवल भगवान् ही महत्त्वपूर्ण हैं, सर्वोच्च मूल्यवान् हैं। केवल भगवान् को ही मैं गम्भीरतापूर्वक लेता हूँ। अन्य सब-कुछ उनकी इच्छानुसार जैसे होता है, हो! केवल भगवान् की ही इच्छा पूर्ण हो, ऐसा सोच कर वह कहता है मैं आपके समक्ष नतमस्तक हूँ। आप सर्वज्ञ हैं, सर्वान्तर्यामी हैं, सर्वशक्तिमान् हैं। आप जो चाहें, सो कर सकते हैं, और जो-कुछ आप करते हैं, ठीक करते हैं मैं पूछने वाला कौन हूँ, आप जो करें मुझे स्वीकार है।”

अतः वह सर्व-स्वीकृति की अवस्था में है। कभी भी विशुद्ध नहीं, सदैव शान्त, यह जानते हुए कि सम्पूर्ण विश्व भगवान् के हाथों में है। “सब-कुछ जैसे हो रहा है, होता रहे। वह सर्वज्ञ हैं। वह सर्व समर्थ हैं कि जैसा चाहें वैसे करें। वह सर्वज्ञाता हैं और जानते हैं कि क्या सही है। और वह सब-कुछ अनन्त प्रेम और अथाह करुणापूर्वक करते हैं। अतः मैं कुछ भी प्रश्न मन में नहीं लाता।” इस प्रकार समझते हुए भक्त प्रशान्त अवस्था में स्थित रहता है; वह भगवान् की परिपूर्ण सर्वज्ञता,

‘सर्व प्रेममयता’, ‘सबके प्रति न्याय’ और उनकी ‘सर्व सामर्थ्य’ पर पूर्ण विश्वास रखता है।

इस प्रकार भक्त और ज्ञानी जीवन और उसकी परिस्थितियों पर अपने-अपने ढंग से किन्तु पूर्णतया ऐक्यता से चलते हैं। समत्व की, स्थितप्रज्ञता की आन्तरिक प्रक्रिया इस प्रकार है। एक सच्चे योगी, वास्तविक ध्यानकर्ता, एक सच्चे भक्त और वास्तविक ज्ञानी की आन्तरिक अवस्था की प्रविधि, इस प्रकार है। क्योंकि उनकी आन्तरिक स्थिति शास्त्रग्रन्थों पर आधारित है।

भगवान् के आशीर्वाद आप सब पर हों, कि आप उस अवस्था को प्राप्त करें जिसका परिपूर्ण समत्व और समता आधार है। आप अपनी आध्यात्मिक साधना में सफलता प्राप्त करके प्रबोधन प्राप्त करें !

